मानवी

"शार वेन्दु" इन्दु

प्रस्तुत पुस्तक में "विष्णु पद" "नागराज" "इन्द्रच्छनी" "इच्छनी" नाग भाग शब्द आए हैं।

"विष्णु पद"

ा "नाग राज" जम्मू प्रांत में तहसील गूल गुलाबगढ़ में पीर पजाल पर्वत में स्थित अति सुन्दर झील है। "इच्छनी" स्वच्छ जल की बहती सरिता है। जिसका स्त्रोत नाग राज झील है। "नाग" "भाग" नदियाँ भी इसी झील से निकलती हैं और इनके समीप ही "इन्द्रच्छनी" जल प्राप्त है।

समर्पण

सम्पूर्ण जगत की जननी मानवी के प्रति यह प्रथम कृति।

इन्दु

इन्दु भूषण गांव रैम्बल P/O गढ़ी जिला उधमपुर जम्मू प्रांत
"जम्मू काश्मीर"

मानवी .... लघूकाव्य
इन्दु भूषण .... लेखक
इन्दु भूषण .... प्रकाशक
नाथ आर्ट प्रिन्टंज .... मुद्रक
३ रुपये .... मुल्य

MANAVI ———————— Poetry
By Indu Bushan ———— Rs/3

दो शब्द

मेरे लिए अत्यन्त गौरव तथा प्रसन्नता का अवसर है, जब कि जम्मू प्रदेश के होनहार कवि 'इन्दु भूषण' जी का लघु काव्य साकार रूप धारण कर रहा है।

'मानवी' काव्य में मुझे मानव जीवन के प्रति लिखे गए सभी दर्शनों का समन्वय सा लगा। जीवन-धारा को समय की त्रिधारा में बांटने अतीत, वर्तमान तथा भविष्य का चित्रण भी बड़े मौलिक ढंग से किया गया है। 'मानवी' काव्य में ऊषा के मधुर आलोक से लेकर जीवन की अनन्त यात्रा का मार्मिक चित्रण भी हृदय ग्राही है। यह काव्य केवल भावों तथा मनोवेगों को छूकर आपको सौंदर्यानु भूति ही नहीं कराता, अपितु आत्मा की गहराईयों में गद्-गद् हिलोर देता हुआ मानव की चेतना को रस से ओत-प्रोत कर देता है। काव्य मे स्वभाविक प्रवाह तथा शब्द-चयन भी अपना अनूठा ही स्थान रखता है।

इसी काव्य में उपमाएं बड़े सलोने ढंग से दी गई है

जैसे :—

जब पड़ें उन पर रवि की किरण
अर्ध सुप्त वह अर्ध जागृत,
जैसे साधना में साधक रत

दूसरी एक उपमा तो अपना अनुपम स्थान रखती है :—

जैसे :—

आह कैसा सुन्दर आकार झील का
लगता ऐसे जैसे नीलाम्बर की नीलिमा
बिछुड़ गई हो अम्बर से,

उपरोक्त पंक्तियों में प्रकृति वर्णन भी अपना अद्भुत स्थान रखता है। वाह्य प्रकृति के सुकोमल चित्रण के अतिरिक्त, मानव जीवन की आंतरिक प्रकृति का वर्णन भी हृदय पर गहरी छाप डालता है। जैसे :—

स्वार्थ प्रकृति लघु बीज नहीं
यह एक विशाल वृक्ष है
उपजे जन्तु मानव मानस में

इसकाअतस्वयं विस्फोट है ॥

कवि केवल कल्पना जगत में ही काव्य हिलोर से आनन्दित नहीं होता, परन्तु आज के समाज का वर्णन वास्तविक जगत की कोरी सच्चाई का दिगदर्शन कराता हुआ पुकार उठता है :—

आह कैसा ! अर्थ अभाव मानवों,
जिसमें मानव मन अकुलाए ।
पंख कटे खग सदृश,
जीवन आतुर हो जाए ।

काव्य में ध्वनि चित्रों का वर्णन देखे ही बनता है ।

धांय–धांय के शब्दों से
दिशायें होंगी सदैव विदीर्ण,

रण दुन्दभि है बजती
युद्ध की देवी है सजती,
हर ओर आहा—कार अरे
सिसकते रुंड–मुंड पड़े पड़े ।

शब्द चित्रों का सजीव चित्रण किया गया है :—

जैसे :—

सशक्त सीने से जब
सटा देती अपना मुख,
आत्म विभोर तुम दोनों
सम्भवत: पा लेते
मानव हृदय का रहस्य ।

मैं कवि को प्रथम काव्य की इस अद्भुत कृति के लिए बधाई देती हूं और काव्य जगत् में हर पल अग्रसर होने की मंगल कामना करती हूं

राम प्यारी खजूरिया ज.म्मू ।
प्राध्यापिका कालेज आफ
एजूकेशन

उभरे वक्ष स्थल से
धवल मधु पान कराती,
धन्य तु मानवी !
मानव जीवन में
सरस स्त्रोत बहाती.
प्रेरित तुझ से हो,
प्रतिभाशाली कवियों ने
कविता स्त्रोत बहाया.
मधु मधुर रस से
मानवता पाठ पढ़ाया.

मानवी

न वासना की तृप्ति
अखिल जगत की शीतल साया
तेरी साया के तले
नर भ्रमर अनन्त भरमाया
नर के मरुस्थल में
स्त्रोत स्वच्छ जल छलकाती
मानव के पतझड़ में
मधु मास भरी तू आती
मानव उर में अंकुरित होती
रक्त रक्तिमा से पल्लव

आम के डालों पर बैठे
मानो नव कोमल कलियां
सुगन्धित उनसे हर दिगन्तर
मद मस्त नर भ्रमर
आकिषत सुरभित सुरभि से
डोले लोटे मधु रस पिए
धन्य असह्य पीड़ा सहती
नव शिशु जन्मती
ममता लोरी में सहलाती
इन ममत्व लोरियों से
नर जाति फूले फले

आह कभी इसे भी
ममता का पाठ पढ़ाए.
यह हिंसक नर
हिंसा में न भरमाए.
जब यौवन की तप्तीं
लुह से झुलसे,
लिपटा अपने वक्ष से
शान्त करे तुं इसे.
भूल जाता चिन्तित क्षण,
डूबता निरन्तर मधु में मग्न

धन्य तेरा त्यागमय जीवन,
ममता के साए तले
न कभी मन उन्मन.
अब थका हारा यह
आए गृह के भीतर
नन्ही नन्ही स्मित लहर
सहलाए इसके चिन्तित क्षण.
त्याग चिन्ता का आवरण,
बढ़ता पुन यह सगर्व.
धन्य कोमल लटों के भीतर

मानवी

छिपें जब विधु कलायें सुन्दर
उस पल काजल सी रैन
झपटे मानव मानस पर
आबाद रहो सुख सागर लिए
छलकती रहो मानव मानस में
ममता की लघु लहरें
तेरे हाँ करने पे
साहस का द्वीप जले
विश्व विजेता लगे निरन्तर
विश्व विजय का स्वप्न देखने

तेरे न करने पे
    अमर कवि अमर रचना रचे
स्वयं में रहस्य है तूं
    तल छू सँकू मैं कैसे
नर जाति के मध्य
    निरन्तर — तू है रमती
झरनों का राग रागिनी
    अरी नर की गृहिणी
राग सुना दे झरनों सा
    सजग हो उठे प्रकृति भी

मानवी

कभी छुपाया अरी अभागिन
पर्दे के ओट में तुझे.
परलोक सुधारने अरे अपना,
जलाया चिताओं में तुझे ;
छलक रहे आखों में आंसू
और क्या अर्पण करु तुझे.
यह स्वयं जब चाहे
जिसके अंग-संग बिचरे
तूं विधवा बन बिलखती
विरहनी है कोइ रोती

पत्नी के लिए भगवान् पति
  नर की तूं भोग भोगिनी
क्या तेरा प्रतिकार यही
  जब चारों ओर तम व्याप्ता
तूं जन्में कोख से
  बुद्ध मुहम्मद कबीर ईसा
अंधकार अज्ञान दूर करें
  मत भूलो अपना अस्तित्व
न डुबाओ नर जाति को
  वासना की सरिता में

उभरो स्वयं उभारो इसे
सुगन्ध–मय हो जाएं
जग का आंगन अरे
मुधु बन मत छलको
छलकाओ ममता का स्त्रोत
तुम माया हो मोहिनी भी
एक रूप में तुम रति
झुके तेरे सन्मुख अनेक यति
सत्य प्राकृतिक आकर्षक महान
वृक्षों से लिपटी लतिका

धूप संग मानो साया
चन्द्र की सुनहली चन्द्रिका
प्रकृति के सुन्दर भावों की
प्रतीक अरी ओ सांवरी
मानो साकार हो प्रतिमा
ब्रह्मा के कल्पित ब्रम्हांड की
तोड़ दासता की जंजीर
स्वच्छन्द बिचरा तुम करो
वासना नदी मृग तृष्णा की
प्यास न कभी बुझी

मानवी

भर के अतृप्त ओठों में
अमर तृप्त ममता का
ऐसा स्त्रोत छलका दो
पुन: जड़ जाति को
सींचें अरे ओ बांवरी
ममता की लघु-लघु लहरी
प्रकृति का अखिल सोन्दर्य
निखता संग बढ़ता पलता
जब कोमल तेरे कर
स्पर्श करें वीणा के आतुर स्वर

उस पल तब नीरवता
    भी रहती पगली ठगी ठगी
जब धीरे-धीरे जग में
    निशा तूं घिर आए
तेरे केशों से तारक उलझ
    यह रहस्य कह जांए
तेरे सुख आंचल तले
    यह नर फूले फले
प्रात: जब घूंघट खोले
    मुस्सकाती आलोक में मिल जाए

चिर सहचर को तो
        रवि विलिप्त कर लेता
तब अपनी प्रखरता से
        जीव जड़ जाति को
अमरता प्रदान कर देता
        निशा सी तू मानवी
मानव के जीवन में
        नित्य विलिप्त हो जाना
सूरज सदृश चमके यह
        जीवन ध्येय बता जाना

जीवन अरे संघर्ष-मय
    धरा यह संघर्ष-स्थल
कर्म के पंथी पथिक
    मत सोच तू सफल
या तू है असफल
    संग अगर मैं न चलूं
तू मानव बढ़ते ही जाना
    मैं हूं समय की धरोहर
जब चाहे मुझे भर जाना
    कैसा तेरा झरना अरी

मानवो

मत झरो अनन्त से जागो
जग स्थल सूना हो जाएगा
ज्ञान शून्य यह नर
अज्ञान में पुनः भरमाएगा
यह ज्ञान जिसकी मशाल
सुकरात आलोकित करते थे
सुसज्जित हुई तब धरा
न कोई मन अकुलाया
मैं तेरी इच्छा हूं मनुज
तेरे संग रहती तल्लीन

उस बांवरे आकाश की तरह
क्षितिज के अन्तिम छोर में
जो हो जाए नित्य विलीन
मैं जानती हूं पथ अपना
दूर अति मेरी मंजिल
परन्तु आलोकित अपने आलोक से
उस ओर मुझे बढ़ना है
विश्वस्त सफल हो जाऊंगी
जिस अभिलाषा की अभिलाषिनी
वह आशा पा जाऊंगी

श्रास की लता पर
होता हर प्राणी है निर्भर
मैं तेरी श्रास श्रनादि हूं
जब जीवन में शाम ढले
तू विह्वल हो जाएगा
मैं मुक्तक हंसी बिखेरूंगी
पुनः नव उदित हो रे
तू नया जीवन पाएगा
मैं मानसिक शान्ति हूं तेरी
जान श्ररे पहचान मुझे

अन्त से संग तेरे चलूं
मधु मधुर रस स्त्रोत लिए
बदली हूं सुख की रे
नित्य बरसूंगी तेरे मानस पे
खिल उठें नन्हीं नन्हीं कलियें
आस के उर में इच्छाको
खेलें नव लघु-लघु खग
नित्य नए गीत लिए
अमल धवल मधु मधुरता
की लघु लघु लहरों से

मानवी

तेरा जीवन सहलाँऊगी
फूले फले मानवता तले
चिर मानवता का पाठ पढ़ांऊगी
जब नव शिशु जन्मतो
सीमित सम्प्रदायों में बंट जाता
अलग अलग सम्प्रदायों में बंट
वह रे गौरवशाली कहलाता
सीमित वृत में कैसा गौरव
उठ कर निरन्तर विचार मग्न
रक्तिम रक्त–अरे मानव जीवन

हर सम्प्रदाय रे मनुज
रक्तिम रचना पर निर्भर
रचना की साधना में
हो हर प्राणी अग्रसर
पूर्ण होगी तब साधना
साधक सुख संचार करे
दु:ख कुकर्म में फले बढ़े
साधना-तम दूर हरे
जब मानव जग स्थल आए
न पिसे धर्मांधता में

सुन्दर हो मन को भाए
ऐ मानवी अपनी साधना से
नन्हें जन अरे मानव के
मानवता में रंग दे
निखरें सँवरें रे मनुज
जीवन के — तब रंग रूप
चिन्तित अरे मानव प्रति
प्रगति जीवन का स्तर
अवनति के अन्तंगत
रहे सदैव अंकुर उन्नत

आकाश को छूने के आकांक्षी
उड़ाने उत्साहित हो भर
प्रकृति के सुन्दर भाव जान
पा जाएगा जीवन का स्वर
यह विशाल धरा आज
स्वयं सिकुड़ गई क्या
क्षण में क्षणिक तूने
छू लिए अनेक छोर
समुन्द्र की छाती चीर
चिर परिचित उससे भी

स्वयं विधु विस्मित
सम्भवतः है वह विह्वल
सोच – छीनने – तू उसकी
प्रिय चन्द्रिका है व्यस्त
आह होते आज देव
झुक जाते लज्जित सदैव
इर्ष्या होती उनको भी
न सहते मनुज प्रगति
शैल–शिखर झुक रहे तेरे सन्मुख
कलोल करती नदियां शांत तेरे सन्मुख

भौतिकता की क्या सीमा
संग संग करता कभी
उन्नत तू अपनी आत्मा
होता धर्म तेरा मानवता
मानव होता तब जाति
किया जब जब प्रकृतिक संग
हुआ न कुरूप तेरा रंग
परन्तु जब राग द्वेष
अपनी सीमा तोड़ने लगा
बंटी धरा अनेक खण्डों में

मानवी

मानव हुआ सीमित प्रदेशों में
कई मनुज हुए अग्रसर
सब समेटने की कर आकांक्षा
जन्म सिद्ध अधिका हमारा
अन्य मनुजों पर करने प्रभुता
किए अकरान्त अनेक प्रदेश
अपनी सत्ता बचाने हेतु
मानव मानव में बड़ा द्वेष
अनेक बार रक्त रंजित हुई धरा
कोमल २ भावों की समिनी

विकृत बाजारों के मध्य नग्न
अति होता यह प्रसन्न
समझ भुजाओं का पौरुष प्रबल
आह कभी करता विचार
मुझे भी ऐसी कोमलांगना ने
दिया जन्म है बार-बार
न जन्मने के उपरान्त स्वंग है
न झरने के उपरान्त नरक है
नरक तेरे कुकर्म की साया
स्वंग तेरे कर्मों का फल

विश्वस्त रह विश्वास कर
    यह जग अरे आत्म जलधि
चलता फिरता अरे यह बुत
    जल में एक बुदबुदा मात्र
इस बुदबुदे के भीतर
    अरे वह तेरी आत्मा
जिसका आहार स्वयं प्रेम है
    जो प्रेम किया राधिका ने
हुए अमर हैं कृष्ण मुरारी
    रहस्य स्वयं ब्रह्मांड इसका

ब्रह्म इस के अरे रचियता
  इस की रचना यह नर-नारी
नर अनन्त से अभिलाषी
  पाने रहस्य नारी का
परन्तु सदैव अपने को
  सीमित कर वह देता
सजल नेत्रों से अरी
  टपकाती तू ममता बूँद बूँद
सत्य ही तू अरी
  स्नेह वातसाल्य की देवी

तेरी स्नेहिल इच्छा तले
    मानव अन्ततः फूले फले
इच्छा कितनी तू है चंचल
    प्राणी तुझसे है विकल
जीवन तुझ पे है निर्भर
    अति सघन आवरण यह
न मानव इतना प्रबल
    झाँक परे अरे देखे
सुना है आदेश तूने
    इच्छाओं का दमन कर

मानव पाए शान्त रत्न
अरे शान्त जलधि में
कब हिलोल चंचल होती
छोर रहता दूर अरे
कब छोर छू पाती
ऐ मानवी-इच्छुक की साकार प्रतिभा
प्रतिभा प्रबल पुंज अरे
जब जब आए समीप यह,
इच्छा के जलधि में
असंख्य उठें तीव्र लहर

मानवी

भंवर उठे पल क्षण हर
खो जाए मानव तदन्तर
ऐ मानवी उठ झर
मानव उर में उठे लहर प्रबल
नदिया के भीतर जल धारा सी
मिला दे मानव जीवन को
उस अनन्त जलधि में
स्वतन्त्र प्रकृति में ही
प्रगति होगी तेरी अरी
स्वच्छन्द बिचरती तू अगर

कितना सुखमय होता
तब मानव का हर पल,
ऐसा शंख नाद करो
अखिल धरा शाँत निलय हो .
सशक्त करों में सदैव
शान्त माँ का वरदान हो,
दासत्व के ध्वसंक आवरण में
न कोई मन अकुलाए .
पाषाण युग की भी
अतृप्त आत्मा मानव की,

मानवो

मांसल अंगों को
    छिपा शुष्क तृणों से,
थके हारे जब तुम दोनों
    चिकने चौड़े पत्थर पर
संस्कृति रचते भविष्य की .
    सशक्त सीने से जब
सटा देती अपना मुख,
    आत्म विभोर तुम दोनों
सम्भवतः पा लेते
    मानव हृदय का रहस्य .

रैन के उस पहर
जब धीरे – धीरे
पश्चिमांचल में ढले रवि,
तब श्याम वर्ण की रैन
अपने कोमल केशों से
जग स्थल को थी ढंपे,
परन्तु पुनः प्रखर प्रातः से
जग के आँगन में,
जीवन जोवा प्रदान करे
लघु लघु खग तब

मानवो

गाए गीत प्रणय के
मानव जाति के अभिनन्दन में,
कभो स्वर्ग का आलोक
ले आए तू भू पर
आलोकित होता मानव जीवन .
तेरी युगान्तरों की साधना से
मानव जाति प्रगति पर,
विज्ञान के अनुसन्धानों से
जीवन अति सुख पूर्ण .
धरा स्वयं सिमटी अरे

वायुयानों के आवेगों से
 काँप उठा माँ हृदय
परमाणु बम्बों के विस्फोटों से
 कल यन्त्रों का आविष्कार,
सन्देश – पूंजीपतियों का
 स्थल पर अधिकार.
इन्हीं के पंजों में
 उलझ रहा मानव जीवन,
बिभक्त हो रहा यह
 दरिद्र – धनी वैभवशाली में.

वंचित जीवन की प्राथमिकता से
जीवन-जीना दूभर रे,
प्रात: जब आँगन - आए
चेतना का बोध करा।ये,
उठे अरे यह दरिद्र
कल यन्त्रों की खट - खट,
मानो इसे हो बुलाती :
जीवन के सुनहले क्षरण,
वैभवता किसी की करने उन्नत
बीत जाते अरे निरन्तर

स्वयं जीने हेतु संघर्ष
    जीवन की एक परत उपरान्त,
अन्य परतें स्थान ले लेती।
    मानव द्वारा मानव शोषण
और नहीं विकार मस्तिष्क,
    शोषण तेरा स्थान अपूर्व
भयंकर तपती रवि किरणें
    करें जब जल शोषण।
छुप जाए रवि प्रखर
    आच्छादित हो आकाश गगन,

बहे जब धारा – जल
सूखे तृण कण – भूखे
पांए नव यौवन जीवन.
भूख तड़पते पेटों को
स्वयं पथ दिखलाएगी,
शोषण अरे सदैव नहीं
व्यस्त प्रभुत: अपनाएगी.
शोषित उठेंगे दिगन्तर में
ऐसा उमड़ेगा – नाद अरे
नर उर का विषाद

बहेगा हर ओर से ।
उखड़ेगी कृत्रिमता जीवन में
मन अकुलाया रे जिस से,
अरी मानवी शोकातुर तू
कोने में क्यों पड़ी ।
जीवन का हर क्षण
हो रहा निरन्तर विलय,
उर – उर में कलह विरह
नहीं दीखता शान्त हृदय ।
जिसमें तू कोकिला

गाए गीत सदा प्रणय :
निरन्तर जूझता सर्घषों में
मानव का इतिहास रे.
हर प्राणी में रे
एक अखंड ज्योति विद्यमान
वही विकराल रूप
धारण करती कभी – कभी :
आह कैसा होता क्षण
त्याग हर मोह बन्धन,
मानव खड़ा मानव सन्मुख

तत्पर करने मृत्यु वरण ।
राम राज्य में भी
ऐसा हुआ रे कभी,
स्वर्ण लंकेश्वरी विधवा बनी
बिलखती थी वह विरहनी ।
पांचाली का पट चीर
और वीर थे उत्सुक,
देखने उसका नग्न शरीर ;
भीष्म द्रोण गुरु अरे
सिर झुकाए पड़े रहे,

वह भयंकर टंकार गांडीव की
    चुप साधे – अर्जुन की पड़ी ।
प्रकृति का यह नियम अटल
    हर स्थिति की सीमा होती,
असीमित होता कोई पल–जब
आरम्भ होता महाभारत उस क्षण तब,
रण दुन्दभि है बजती
    युद्ध की देवी है सजती,
हर ओर आहा–कार अरे
    सिसकते रुंड–मुंड पड़े पड़े

सर्वत्र बहती रक्त नदी .
  आह कैसा विधान विधाता का
मानव उन्नत होने उपरान्त भी,
  अवनति के गर्त में गिर जाता .
सत्य मनुज—है इतिहास दोहराता,
  मानव कर्मों की तूलिका से
समय के चपल पटल पर,
  निराले विस्मित चित्र खींचता .
कर्म के इन चित्रों पे
  मानव जाति का इतिहास खड़ा,

मानवो

सकुशल चितेरा चित्र है रंगता,
निरन्तर मानवता गन्ध हो जिनमें
जन उर शान्त जिनसे.
भविष्य की संतति नत-मस्तक हो जाती
वही प्रतिभा-मानव की-प्रतीक कहलाती.
पूजा करता-निरन्तर जन जीवन उसकी
प्रेरित होता उससे मानव भी
जननी तूं ऐसे पुष्पों की
महक उठे जिनसे जीवन बगिया.
कोई चितेरा काल पटल पर

स्वार्थ को लिए तूलिका कर में
कहीं बैठा बन्द कमरे में,
निराले निरन्तर चित्र हैं चित्रे.
स्वार्थता के इन चित्रों में
भयंकर चिंगारी निरन्तर दहके,
स्वार्थ प्रकृति लघु बीज नहीं
यह एक विशाल वृक्ष है,
उपजे जब मानव मानस में
इसका अन्त स्वयं विस्फोट है :
आज विस्फोट की सीमा पर

हो रहा है मानव अग्रसर,
बन्द कमरे में कोई मस्तिष्क
ध्वंस की रचना है रच रहा,
अरे इन अस्त्र – शस्त्रों का
निर्माण क्यों आज हो रहा.
आज पुनः क्यों कोई
ध्वंस के स्वप्न देख रहा,
ए मनुज तूं अकेला ही
न स्थल का वासी
अन्य जीव जन्तु भी तो

जीने के निरन्तर अभिलाषी.
        संघंष तो नित्य वह करते,
जीवन में रे मनुज
        जीने हेतु संघंष अभिशाप नहीं.
अरी मानवी पुनः भविष्य के मंच पर
        धूमिल होगा जग का आँगन,
विस्फोटित यंत्रों के कारण,
        बिन बादल चपला चमकेगी
भयावह स्थिति में होगा,
        मानव जाति का प्रतिक्षण.

जन की एक लहर उपरान्त
 अन्य बढ़ेगी अरे तत्क्षण,
घांय–धाँय के शब्दों से
 दिशायें होंगी सदैव विदीर्ण,
जब एक तरफ वैभवता का
 ध्वज आकाश को छूएगा,
सन्मुख दरिद्रता विवशता का
 आक्रोश निरन्तर उमड़ेगा।
आर्थिक बन्धनों की कड़ियों में
 सदियों से चलती रूढ़ियों में,

मानव तो दुखित होगा ही ।
तेरे विकसित युग में
मानव अंग हुए विकृत,
ऐ–कल यंत्र के आविष्कारिक
सदैव से इस दरिद्र का,
शोषण २ मत कर–मत कर :
आर्थिक अभाव के कारण ही
नित्य निरन्तर टूटता मानव,
आह कैसा अर्थ अभाव मानवी,
जिसमें मानव मन अकुलावे

पंख कटे खग सदृश
    जीवन आतुर हो जाए,
परन्तु हीन–दीन दशा इसकी
    देख नित्य नहीं तू पाती,
आंखों से उमड़ती गंगा–यमुना
    हुई भावुक इन्हीं भावनाओं में
तिरती–डूब कभी तू जाती .
    अखिल धरा माँ वसुन्धरा
समाजवाद की अरे पुजारिन,
    बाँटती अपना धन वैभव

जीवित जिससे जड़ जन जीवन .
　　जब तुझे अशक्त है पाती।
सदैव अपने में समेटा करती,
　　पुनः रूप सी बेलों द्वारा
स्थल के रंग मंच पर
　　नये नव कुसुम खिलाती .
निखर उठें समय के पल
　　धन्य तूं – मां धरा,
जीव जड़ जाति तेरे कारण
　　अनन्त से सजीव रह पाती :

तेरा अरी विस्तृत आवरण
उभरे ममता मयी के सदृश,
तुझ से हर जाति अमर
नत – मस्तक विलय हो जाऊँ,
और नहीं है कोई आकांक्षा
पुनः स्थल के रंग – मंच पर
मानव सेवा अर्पित ढल जाऊँ .
मानव के स्थल मन्दिर में
मानवता का दीप जले,
नहीं कहीं कलह – विरह वेदना

त्यागे मनुज अरे शोषरगा
सुख की झरें अरे किरणें ।
कितने आनन्दमय हों क्षण
जब सुखमय आँचल तेरा,
सुख वैभवता का संचार करे ।
आह यह कैसा दूषित जीवन
आह अरी यह बोझिल पल,
तू इनमें निरन्दर ढली रमती तो
लुप्त होते स्वयं यह क्षण,
स्वच्छता की परतों में

मानवी

होता परिणित यह जीवन.
अनुराग प्राग की सीमा पर
सीमित होता यह नर,
कलिका सुगन्धित हो जब
भँवरे पायें आलोकित स्वर.
आज परीक्षा की घड़ी
उठ तू री मानवी,
समय के मस्तक पर
शताब्दी के अन्त तक,
शब्दों की वीथिका में

अपने अनुशासित अनुकरण से,
विचारों की बदलती धारा को
उठ - उठ रुख दे - बदल दे .
स्थल के आँगन में
ऐसा नर विचार विमर्श करे,
यह धरा व्यथित व्याकुल
क्यों अशान्त हर हृदय .
विज्ञानों के अनुसंधानों से
बिस्फोट - तो अरे होगा रे,
हो अगर बिस्फोट तो फिर भी

मानवी

जन हित मानव कल्यान लिए .
न कोई भूखा बिलखता हो
न कोई नग्न शरीर ही हो,
धर्माधन्ता के तले न कोई नर
निः श्वास छोड़ता हो हर क्षण :
मानव मानवता हो तेरा धर्म
अरे सदैव – तू मन
इस विचार में रह मग्न,
मन मन्दिर के तम में
तब दीप आलोकित होंगे ही .

विश्व वेदना का क्रन्दन,
    शांत हो पल हर क्षण,
आह यह क्रन्दन
    अखिल धरा मां का क्रन्दन
अखिल जन–मानस का रुदन
    करे कब तक प्रकृति सहन.
धरती का चिर प्रियतम
    अरे यह आकाश गगन,
लघु लघु जल कण से
    करे न तेरा अभिनन्दन.

यह चमकता रवि प्रखर
        जिस की प्रखरता से सब चेतन,
जब असीमित होता रुदन
        भयंकर – प्रखरता से – प्रखर
जला डाले सब चल – अचल .
        वेगवती धारायें तब
जिन पर जीवन निर्भर,
        सर्प की जिह्वा सी लपकें
भूमि – सात तो होगा जीवन
        क्या बचेगा इन से जड़ ?

जलधि तोड़ सीमित बन्धन
उमड़े नाश हेतु अरे
अपनाये विनाश के स्वर,
उमड़ते आकाश पर बादल
जलधि से पाएं शाश्वत जीवन
कहां रहेंगे वह चुप :
गर्जन – तर्जन करते वह
टूट पड़ेंगे जन जीवन पर,
धरा का हिया विदीर्ण करेगी
मानव जीवन पे टूट पड़ेगी

मानवी

यह धरा आदि से
    बहाती है अमृत धार
आज नाश का दृश्य देख
    गिर चुकी स्वयं मँझधार,
उठ मानवी — मानव के
    व्यथित जीवन में
स्वर दे — लय दे,
    समय के अधर पर
स्वयं स्फुटित होंगें स्वर,
    रूप की गन्ध में

स्पर्श का होगा आकर्षण,
स्पर्श की उस बेला में
जीवन के मधुर स्वपन
स्वयं होगे — रे पूर्ण.
उर – उर गूंज उठे
मानवता के गीतों से
शब्दों की झंकारों में
जीवन कितने मद — भरे.
उफ री प्रकृति की
सुन्दर तूं कितनी कृति,

मानवो

दूर कहीं विजन खड़ी
        कल्पना करें अवशेषों की
कितना होगा करुणा – पूर्ण
        मानव संस्कृति का अन्त,
मानव सभ्यता के स्तूप
        धूमिल धूसरित आज
परतों के तले छिपे
        जम चुकी है उन पे धूल
इन भग्नावशेषों पर कभी
        मानव सभ्यता थी खड़ी

अरे सत्य हर कृति
साया बन पीछे चलती
विचारों की श्रृंखला पर
मानव की रे प्रगति
चिन्ता से हुआ कुरुप रंग
उठी विचारों की धारा में बहती
नहीं विराम चलती वह रहती
रुकी यहाँ उतराँचल में
बहे इच्छिनी की धार धार
झर-झर झरे निरन्तर अरे

गाये गीत प्रकृति के आकर्षण में
कितना आकर्षक प्रकृति का आकार
प्रथम रवि की किरणें जब
चूमे प्रातः प्रभा को रे
अलसाई मानवो उस पल तब
गुम सुम बिचारों में थी लीन
उफ तृष्णा की प्रथम लड़ी
पूर्ण करने थी वह चली
क्षणिक हुई थी वह विस्मित
निहार प्रकृति का निखार

श्वेत पुष्पों से थे ढपे
    ऊची चाटियों के शैल-शिखर
स्वर्णिम अरुण की अरुणा
    जब प्रचण्डता से है पड़े
द्रवित हो जाए हिम हृदय
    बह उठे हिम शोत धार-धार
कूलों पर तू बैठी कहीं
    सुकोमल पांवों रखे मँझधार
माखन सी चिकनी पिडलियां चूम
    झूम उठें जल कण बार-बार

धीरे-धीरे पश्चिम में ढलती
    सन्ध्या परी सी आई उतर
तम के विस्तृत आवरण में
    शीघ्र ही हो गई लुप्त
नील - चषक को था किया
    लघु-लघु मणियों ने सुशोभित
सन्मुख से इन्द्र निखरता।
    रात्रि का तम पट चीरता
सुनहली किरणों के कोमल
    स्पर्श को पा हुआ हर तृण निहाल ?

मानवी

दिगन्तर शान्त वातावरण
कौन चाँदनी की परतों पर
धरा पर हुई अवतरन
मन्द गति से चलती सुरभि
मानो उद्वेलित थी करती
फूट पड़ी जड़ से झँकार
चन्दन प्रतिमाओं का झुण्ड
जल क्रीड़ा में हुआ मग्न
निरन्तर उठती उर्मियां
विकल शूने कोमल अंग

खोल अपने किसलय केश
डुबो लेती जल में बार-बार
भीगे कच से मचलते
मोती से जल कण
ढलते स्थानों के मध्य जब
अभागे आह भर जाते
अति निराश होने अपरान्त
स्वयं जल तरंग में मिल जाते
रात्रि के परले पहर तक
नीर की उफनती तरंगें

चाँद सी प्रतिमाओं संग
क्रीड़ा में रही मग्न
पूर्व दिशा से सन्मुख
चोटी के शिखरों पर
उडुगन–प्रथम आभा का प्रतीक
मानो रवि के आगमन की
सूचना देने आया हो
वह परियों का झुण्ड अरे
अपने में सिमट गया रे
किया क्षणिक विश्राम उन्होंने

मानवी

वायु वेग से चलने लगी
    वह पवन के प्राणी भी
कहीं अदृश्य में शीघ्र ही
    निरन्तर लुप्त हो गए
प्रथम अरुण की किरणें
    बहते जल को जब चूमें
उठा कुहर का झुण्ड अपार
    त्यागा प्रिया ने था उन्हें
बार - बार आह भरे तरंगे
    उठी मानवी विकल सी

वह साक्षी – विछोह मिलन की
प्रणय सशक्त मानव बन्दन,
अगर पाता हर हृदय रहस्य
संघर्ष होता अरे क्षणिक .
न प्राणी होता कोई विकल
मानवी का आकुल वह स्वर,
उत्पन्न करे कम्पन हर दिगन्तर .
अखिल प्रकृति की प्रतीक स्वयं
प्रकृति की गोद में गई सहम,
अपने विचारों में इतनी लीन

दिन चढ़ा कब हुआ विलीन
न रहा ज्ञान उसे रे.
उठी स्वयं पद-चाप बढ़ाती
रुकी जहां परियों के झुन्ड से,
झील-लहरें क्रीड़ा थी करतीं ;
कल्पना कर रात्रि के दृश्य
रोमांचित थी वह होती,
साकार कल्पना हुई उसकी
सन्मुख साक्षात् कृतियां जब हुई .
वह स्वयं पहुंची उनके समीप

विशाल नयनों की वह नलिनी,
परियों की रानी नीलमणि .
सहज सरल स्वभाव उसका
नहीं कपट लेश मात्र था,
सन्मुख उसके थी परे खड़ीं
चल अचल जननी मानवी :
विस्तृत गम्भीर गहन आंखों में
मानवता थी निरन्तर झलकती,
किया उन्होंने क्षणिक स्नाव
ले उड़ी संग उसे परे

मानवो

जहाँ था उनका निवास स्थान ,
ऊंचे आसन पर आसीन कराया
संग अपना था आसन लगाया,
लघु-लघु माणिक कणियों से
दीपित थी होती हर दिशा :
पीत आभा के भीतर
चिन्तित रेखायें ———
मानवो मुख की
दिव्य-आत्मा निरन्तर थी पढ़ती .
कमल कलि से सुन्दर लोचन.

उठे पलक — मानो करें प्रश्न,
जान गया शुभ्र कानन झुण्ड
ध्वनि उठी छनन छनक छन,
अम्बर से ढलती ज्योत्सना
लगता मानों गई थी थम,
घुंघरुओं की वह रुन झुन
भेदती व्यथा का आवरण,
साम्राज्ञी ने छेड़ी तान स्वयं
प्रसन्न लगते जड़ जन प्राण :
अपनी धुन में मग्न थीं सब

पूर्व दिशा से भेदता नभ
उगा अरे अर्क अम्लान,
रानी की लय हुई विलय
थमी घुंघुरुओं की भी छल
मानवी लखती हर्षमय
भाग्यशाली प्राणी यह
नहीं द्वेष से बँदे हुए.
अपूर्व शान्त था वातावरण
मानवी ने किया विचार प्रकट:
परियों की वह नील मणि

छड़ी संग ले मानवी .
    विराजते यहाँ नागराज भी
किया था उन्होंने विश्राम
    यहाँ था इन्द्रछत्री जल प्रपात .
सुन्दरता के आवरण में लिपटे
    नन्हें – नन्हें पुष्पों की कतारें
मानो किया हो प्रकृति ने श्रृंगार
    चारों ओर — पर्वतों की कतार
लगे मानो प्रकृति के रूप की
    रक्षा हेतु खड़े हो गिरिराज

मानबो

झर-झर झरतं झरने अरे
    हर झरने में झरता प्रपात,
अपूर्व छटा का था निखार;
    निरन्तर वेग से गिरता जल
करता था अरे क्रूर नाद .
निकलती निरन्तर जल करण की बून्दें नन्हीं
चिन्तित मुख को मुखरित थी कर रहीं
    विस्तृत प्रकृति के आँगन में
पक्षी गा रहे थे अरे गान,
समीप ही हिरणों के छोने करे विराम .

जब पड़ें उन पर रवि की किरणें
अर्ध सुप्त वह अर्ध जाग्रित,
जैसे साधना में हो साधक रत.
ममता का झरना
फूटा ममता मयी में,
उठी बढ़ी उस ओर
जहाँ नन्हें प्राणी करें विश्राम,
झुकी उठाया गले लगाया
किन्तु कान - हुए सावधान .
धन्य वह हिरणों का नन्हा

मानवी

ममता प्रतिमा ने गले लगाया,
दूर तलक–शुभ्र फैला हिम आवरण
जिसमें छिपा चंचल नीलाम्बर जल,
मानवी क्षणिक विस्मित निहार दृश्य
करे विराम विष्णु पद के कूलों पर ।
विचार शील शीतल विचारक
पर्वतों के हरित आँचल में हो आसीन,
अपने विचारों में थीं लीन ;
जब मानव मानस अरे
ढंप जायें अज्ञान आवरण में,

अज्ञानता में खोये हुये
काँचन के व्यस्त पूजन में सीमित,
नित्य नये जाल बुनते हुए
रक्त विहीन करते हैं वह
तन्दुए की तरह हर जन.
अनुपम प्रकृति की प्रतीक
जनमय कोख से प्रतिभा प्रभा,
धीरे-धीरे छने अज्ञान आवरण
भयंकर आक्रोष घोष हो प्रबल,
फैले शुभ्र आवरण भीतर.

मानवो

चचल जल रहता होगा विकल
प्रकृति के विस्तृत आँगन में
झर झरने होता होगा आकुल.
कैसा रुपा का प्रबल आवरण
पीढ़ी दर पीढ़ी संस्सृति मानव,
अथाह अभाव में लुप्त हो जाती
नन्हे-नन्हे बिलखते रहते,
जग स्थल पर खिलने पूर्व
मृत्यु अगोश में मिल जाते :
अभी विचारों की उर्मियों से

नहीं विमुक्त थी हो रही,
अरे स्थल के प्राणी मानव
विचित्र आकार बनाया जीवन.
विचारों की टूटी उसकी शृंखला
जब प्रलयंकर था घोष हुआ,
बिखर गए हिम खण्ड खण्ड
नीर लहरें उठें प्रसन्न मुख.
वायु के चलने उपरान्त
भीमकाय हिम खण्ड अरे,
टकराये स्वयं आकरान्त-अशान्त.

आह कैसा सुन्दर आकार झील का
लगता ऐसे जैसे नीलाम्बर की नीलिमा,
बिछुड़ गई हो अम्बर से .
पुनर मानवी थी विचार मग्न
जल की हिलोर चंचल,
भेद गई अरे जल सघन .
चंचल चल जीवन की धार
स्वस्थ बिचारों की वीथिका में
बहे निरन्तर अगर अरे तो,
न नर डूबे कोई मझदार .

ऊर्मिया उठें प्रसन्न चित
        चिन्तक के मस्तक पर,
उभरें रेखायें चिन्तित.
        गम्भीर मुद्रा में वह पुनर
मन चंचल छिपा भीतर-सघन,
        भेद गया अचल अभेद आवरण.
क्या करे अगर नर संघर्ष ?
        न भेद डाले काँचन आवरण,
चारों ओर प्रकृति की अनूप छटा
        जिससे थी निखरती हर दिशा.

विचार-शील शीतल विचारों को विचारक
निहारे पश्चिम में ढलता रवि .
मानवी का आकुल व्याकुल हृदय
पलक हुआ शान्त दृश्य देख यह,
हर प्राणी रात्रि के शीतल केशों भीतर
सुख की करता अकांक्षा अन्त तक .
धीरे-धीरे पर्वतों के पीछे से
विधु उगे धीरता में,
मानवी के कोमल श्यामल
केशों से झरें रे चन्द्र किरणें .

खड़ी सुन्दर पर्वतों की शैली
लगता मानो नीलाम्बर झील की,
रक्षा हेतु पंक्ति बध हो एक लड़ी .
मानवी के आपस में लिपटे ओष्ठ
बुदबुदाएँ-निराश हृदय के तल में,
आप भरे खग हैं—कब गाते
मानवी का चिन्ता आतुर मुख
हो रहा था चिन्ता से विमुक्त,
श्वास की नन्हीं बिचार लहर
स्थल पर सुख का आधार।

पीत वर्णं की वह सुन्दर आभा
नव उर्मियों की मानो आशा,
ओढ़े नीलाम्बर जल जब स्वर्णिम आँचल
चुप-चुप समझे-परस्पर को यह
अनन्त के — प्रेमी युगल .
मानवी द्वेष-अकुंरित होता जिसके मानस
द्वेष की नन्हीं लहर से हुई विकल,
प्रकृति की थी नीरव छाया
बिछुड़ गई मानव से प्रिया,
एहसास हुआ अपने जीवन का ,

सुखमय हो जग का स्थल,
शोषण रहित हो मानव जीवन,
और करूं क्या मैं जीवन की कल्पना
कर्म–संघर्ष की शिला पर
मुझे जीवन की है दिशा बदलना,
भंयकर भंयकर होगा संघर्ष
जीने हेतु — नर मध्य .
मानव का मैं साहस बन
नित्त प्रेरित उसे करूंगी,
जब तक-हर प्राणी-बढ़े प्रगति के पथ पर

तब तक समय की परतों भीतर
    नहीं शान्त मैं भविष्य में ढलूंगी ।
हुई ग्लानि उसे अपने पर
    आह क्यों हुई वह संघर्ष से विमुख,
स्थल वृक्ष के ऊपर अगर,
    खिले नन्हा सा मानव कुसुम ।
दरिद्रता अग्नि शिखा से
    झुलसे न सदैव अरे,
नव कोमल कली—यह वृक्ष,
    असंख्य अभाव में खोए हुए,

जीते जी जीवन का बोझ,
अपने निर्बल कन्धों पर रख.
समय की तीव्र आँधी में
तृण कण से निरन्तर उड़ें.
सघन आवरण अज्ञान भरा
छने झरे अरे तो क्या.
जग जीवन न सुखमय होगा.
व्याकुल वह आह भरे निरन्तर.
कौन विदेश रे — क्या स्वदेश
अखिल धरा माँ सब की.

मानवी

यत्नशील नित्य तोड़ सीमित बन्धन,
रक्त रंजित जिससे मानव जीवन.
मानवता अखंड अमर दीप यह,
तमहीन—आत्मा जिससे अरे
ज्ञान आलोक का लिए हुए,
मानव संसृति की व्यथा हरे .
कैसी समय की यह परतें,
जिसके भीतर अन्त मानव ढले,
कैसा उघर मृत्यु का यह,
सीमित करता जीवन धारा रे .

जहां टूटा वहां अविरुद्ध हुआ,
हर पल जो बीत गया,
हर नर जो व्यथा में विलय हुआ,
अगर भरे विचारक विचारों से,
व्यथित आत्मा मानव की रे .
मनन-शील शीतल शान्त धारा में
जीवन ढले बहे तो,
नर जीवन सुखमय होगा
वाह कैसी प्रगति की सीमा चरम,
जिसमें रहते असंख्य नग्न,

असहाय अबलाओं के लुटते नारित्व,
आह आहों का उठे बंवडर,
शोषण के साक्षात पुजारी,
लुप्त हो पल हर क्षण,
सदियों से चलती रूढ़ियों पर,
निरन्तर हुए हैं हम अग्रसर .
गहन अज्ञान -- आवरण को,
प्रयास आवेग से बदल डालो,
उठो संघंष के मतवालो :
एकांत एकाग्र चित मनन कर रहो,

संघर्ष अनादि से मानव करता,
फिर भी क्यों न टूट रही,
करुणा की यह—श्रृंखला .
उठी शान्त चित्त थी-पर विकल,
बढ़ी उस ओर जिधर थी बहती,
नाग-भाग ननियाँ बल खाती,
जीने का जीवन में राग सुनाती .
आह कभी हर जन झरते झरने से,
बल खाती नदियों से,
जीवन में जीने का राग सुन,
तो अरे जग जीवन सुखमय होगा .
हर पल त्याग भावना से ओत परोत,
बांटती अपार जल स्थल को,
न कभी गर्व से मस्तक ऊंचा करे.
स्थल के तलहट में निरन्तर ढले .
मानवी के स्वस्थ हृदय मे विचार उठे,
समय की बहती नदियां धारा में,
मानव जल सा अन्त से बहे,
अपने में लघु विचार सीमित कर,
घमण्ड से मस्तक नित्य ऊंचा कर,
जन मानस की व्यथा बढ़े-बढ़े .
कैसा घमण्ड का सीमित वृत्त,
जिस में जाए मानव जीवन घिर,
अपनी अलग जल धारा में बहता.

टूटता सम्बन्ध समाज जलधि से जब,
जीवन दिशा द्वेष में बदलता रहता।
विशाल हृदय गम्भीर नीर क्षीर का,
वायु का कभी जब रुख बदलता,
भयंकर उठे लहर-प्रलयंकर प्रबल,
जलधि-समाज दोनों समान्तर भू पर
उमड़ते समाज के रोर-रोष सन्मुख,
कौन ठहरा सब भस्म हुआ।
पूर्व से-निशा के पट खोलता,
बाल रवि अरे-था उदय हुआ।
बाल अरुण की कोमल किरणों,
तिमिर विहीन जग-आँगन कर दें,
उभरे विचारों के तालमेल से,
आलोक बिन्दु मानवी मुख पे,
नन्हें नन्हें जन-मानव संस्कृति के।
स्वार्थ रहित विचारों से भर दे,
स्वस्थ विचारों से अच्छादित कर दें,
शान्त विचार जल कण-मानस हृदय से
ढलें सीचित करें मानस जीवन,
विस्तृत-धरा के प्राँगन को
बंधन रहित-सीमित बिचारों से मुक्त।
मानव मानव कल्याण हेतु हो उन्मुख
बढ़े-पले तो मानव जीवन सुखमय होगा।



अभारी हूंगा उनका जो
मेरी प्रथम कृति
मानवी की आलोचना
कर के मुझ तक भेजें

कैसा अर्थ अभाव मानवी,
जिस में मानव मन अकुलाए;
पंख कटे खग की तरह—
जीवन अति आकुल हो जाए .

'इन्दु'